



बाबू बालमुकुन्द गुप्त के साहित्य में सामाजिक चेतना

सुखबीर सिंह

एम.ए., एम.फिल. एवं नेट (हिन्दी)

मौलिक मुख्याध्यापक

राजकीय उच्च विद्यालय—घुसकानी

जिला – भिवानी (हरियाणा)

शोध—आलेख सार: *वस्तुतः बाबू बालमुकुन्द गुप्त की पत्रकारिता सामाजिक चेतना की दृष्टि से एक ऐसा प्रतिबिम्ब है जो दीन—दुखियों के लिए एक पैगम्बर तथा बेईमानों के लिए एक चाबुक का काम करती है। उनकी साहित्यिक दृष्टि हमेशा ही लोक भावना के अनुकूल रही है। उनकी पत्रकारिता में लोक भावना की अभिव्यक्ति के साथ—साथ संस्कृति की स्वतंत्रता की आवाज भी बुलन्द हुई है। अधिकांश साहित्यिक समीक्षकों का मानना है कि गुप्त जी सामाजिक परिवर्तन व क्रांति के अग्रदूत हैं। उनका साहित्य लाचारों को मदद देता है और सामाजिक परिवर्तन के लिए एक शंखनाद का कार्य करता है। प्रस्तुत शोध पत्र में बाबू बालमुकुन्द गुप्त की पत्रकारिता के सामाजिक सरोकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।*

मूलशब्द: संस्कृति, लोक भावना, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक चेतना, आम—जनमानस।

भूमिका: चूंकि बाबू बालमुकुन्द गुप्त की लेखनी हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में अधिक चली थी और उन्होंने अपनी लेखनी का प्रयोग सोए हुए भारतीय जनमानस को जगाने के लिए किया था। यही कारण है कि गुप्त जी हिन्दी के यशस्वी पत्रकार होने के साथ—साथ सामाजिक चेतना के पुरोधा भी माने जाते हैं। उनकी पत्रकारिता और साहित्य का सीधा सम्बन्ध उन परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है, जो उस समय आम जनमानस को प्रभावित कर रही थी। वस्तुतः गुप्त जी ने किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व न करके सम्पूर्ण भारतीय जीवन को अपनी पत्रकारिता के आधार के रूप में ग्रहण किया और तत्कालीन समाज में फैली हुई सामाजिक समस्याओं को अपनी



पत्रकारिता में यथायोग्य स्थान प्रदान किया। यह एक ऐसा समय था जब भारतीय जनता ब्रिटिश अत्याचारों से पीड़ित थी और सामन्तवाद का दंश भी झेल रही थी।

सनातनधर्मी परम्परा में विश्वास : चूंकि गुप्त जी सनातनधर्मी परिवार से सम्बन्ध रखते थे और उनका तत्कालीन साहित्यकारों, जैसे— पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीधर पाठक, दीनदयालु शर्मा, आदि से गहरा साहित्यिक सम्पर्क रहा और उन्होंने अपनी वाद-विवाद की प्रतिभा को तत्कालीन परिवेश को ध्यान में रखते हुए उसे सामाजिक सरोकार के रूप में प्रस्तुत किया। उनका कालाकांकर प्रवास इस बात का ग्वाह है कि वे पवित्र जीवन में आस्था रखते थे और वैष्णव धर्म में उनकी प्रगाढ़ आस्था थी। एक बार जब वे कलकत्ता जा रहे थे तो उनमें भोजन के लिए उपयुक्त जगह नहीं मिली तो एक लेख में उन्होंने लिखा है — *“गाड़ी के भीतर की दशा मैं सुना ही चुका हूँ बाहर भी स्थान न था, यात्री फिरते थे, साहब-मेम फिरते थे, कबाब-रोटी वाले फिरते थे, असबा-कुली फिरते थे और गोरे-काले पुलिसवाले फिरते थे। हिन्दू बेचारा कहाँ भोजन करे? खैर खड़े-खड़े ही दो पेड़े मुँह में डाल पानी पी गाड़ी में बैठना पड़ा।”* इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त जी वैष्णव परम्परा व सनातनधर्म में विश्वास रखते थे और उनकी यह आस्था उनके जीवन के अन्तिम क्षणों तक बनी रही।

शोषित वर्ग के पक्षधर : गुप्त जी की रचनाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि वे कृषक समाज की दुर्दशा पर काफी चिन्तित होते थे और कई बार तो उनकी आँखों से आँसू निकल पड़ते थे। उन्होंने अपने साहित्य में शोषित वर्ग का पक्ष लिया है और शोषक वर्ग के खिलाफ आवाज उठाई है। उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना करके दीन-दुखियों के कष्ट हरने तथा रामराज्य लाने की कल्पना भी की है। उनके मन में कृषक वर्ग के लिए जो चिन्ता थी, वह उनकी कविता **‘सर सैयद का बुढ़ापा’** की इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती है:—

फिर भी क्या नंगे-भूखों पर दृष्टि नहीं पड़ती होगी,
सड़क कूटने वालों से तो आंख कभी लड़ती होगी?



कभी ध्यान में उन दुखियों की दीन-दशा भी लाते हो,
जिनकों पहरो गाड़ी-घोड़ों के पीछे दौड़ाते हो।
वह प्रचण्ड ग्रीष्म की ज्वाला और उनके वे नग्न शरीर,
बन्द सेज गाड़ी पर चलने वाला क्या जाने बेपीर?
जिन बेचारों के तन पर कपड़ा, छप्पर पर फूस नहीं,
खाने को दो-सेर अन्न नहीं, बैलों को तृण तूस नहीं।²

प्राचीन परम्पराओं में आस्था: गुप्त जी हमेशा इस बात से चिन्तित रहते थे कि पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से भारतीय समाज और संस्कृति पतन की तरफ जा रहा है। इस लिए वे भारतीय परम्पराओं का निर्वहन करने की सीख देते हैं। इसके लिए उन्होंने धरती, प्रकृति और देवी-देवताओं से भी प्रार्थना की है कि वे भारतीय लोगों को भटकाव के मार्ग से रोकें। उनका मानना था कि भारत का विकास तभी हो सकता है जब भारत अंग्रेजों की चापलूसी छोड़कर सच्चे भारतीय होने का फर्ज अदा करे और स्वावलम्बी बने। एक सच्चे भारतीय के रूप में वे प्राचीन समाज की संस्कृति को वे देश की अमूल्य धरोहर मानते थे। उनका मत था कि हमें अपने पूर्वजों के आदर्शों का पालन करते हुए, उन सभी सामाजिक परम्पराओं का निर्वहन करना चाहिए जो हमारी समृद्ध संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। वे पारिवारिक सम्बन्धों में भी सामाजिकता का निर्वहन करने का समर्थन करते थे। उन्होंने अपनी एक रचना में प्रेम व पारिवारिक सम्बन्धों पर अपनी सामाजिकता के सन्दर्भ में लिखा है –

तरल तरंग कहात है तरुनाई को प्रेम,
बित दृढ़ यौवन होत नहीं प्रेमी दृढ़ यह नेम।
ब्याह करन के हेत जो तरुनि दिखावै प्रीति,
सो आदर लायक नहीं यही प्रेम की रीति।³



हिन्दू धर्म व संस्कृति में विश्वास : गुप्त जी हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक थे। इस सन्दर्भ में कृष्ण बिहारी मिश्र ने लिखा है – “गुप्त जी हिन्दुत्व के प्रबल हिमायती थे। उनके अन्दर स्वधर्म प्रीति की एक ज्योति थी। स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान उसी की ज्वाल मालाएँ बनकर उनके व्यक्तित्व का विकास कर रही थी।”⁴ इस सन्दर्भ में ‘धर्म का रोट’ नामक लेख में उन्होंने पण्डित श्याम बिहारी द्वारा एक भारतीय समाचार पत्र की खरीदारी छोड़ने पर टिप्पणी करते हुए लिखा है – “मिश्र जी बीबी बिसेन्ट की हिमायत करते हैं और सेंट्रल हिन्दू कॉलेज के विरुद्ध नाराज हुए हैं, पर धर्म को हिन्दू मिश्र जी के कहने से नहीं छोड़ सकते। इस देश पर 700 वर्ष मुसलमान राज कर गए हैं, कितना ही धर्म विप्लव हो चुका है, धर्म पर दृढ़ रहने वालों के सिर पर तलवारें चल चुकी है, तब भी वह नहीं मिटा। इस अंग्रेजी शासन में भी यह बना हुआ है। हिन्दू धर्म दो बार विभिन्न धर्मियों से विपरीत होने पर तथा कोई एक हजार वर्ष पराधीन रहने पर भी जीवित है, उसे क्या विश्व महाराज एक हिन्दू के हृदय से उसका अढ़ाई रूप्ये साल का कागज न खरीद कर मिटा देना चाहते हैं।”⁵

गुप्त जी हिन्दुओं को अपने व्रत और त्यौहार की महिमा बनाए रखने की बात कहते थे और धर्म के नाम पर आडम्बरों की खिलाफत करते थे। उन्होंने हमेशा धर्म प्रचार की आड़ में गोलमाल करने वालों पर तीव्र कटाक्ष किया ताकि हिन्दू धर्म को बुराईयों से बचाया जा सके।

सामाजिक कुरीतियों का विरोध: गुप्त जी ने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था कि भारतीय समाज में विद्यमान सामाजिक बुराईयों का अन्त किये बिना समाज सुधार का बीड़ा कभी सफल नहीं हो सकता और इसके बिना सामाजिक जागरण का कार्य भी अधूरा रहेगा, जिसके लिए आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज जैसी संस्थाओं ने प्रयास किये हैं। वस्तुतः गुप्त जी विधवा विवाह के तो पक्षधर थे, परन्तु सन्तान प्राप्त विधवा के पुनर्विवाह के विरोधी थे। इस सन्दर्भ में उन्होंने ‘भारत मित्र’ में लिखा है – “विधवा विवाह के हम विरोधी नहीं हैं। सभी जातियों में विधवा विवाह प्रचलित है और सब विधवा विवाह के



तरफदार हैं, केवल उच्च जाति के हिन्दू विधवा विवाह नहीं करते, उसका कारण यही है कि हिन्दू धर्म विवाह संस्कार को और दृष्टि से देखता है और दूसरी जाति के लोग दूसरी दृष्टि से। हिन्दू धर्म में भी यथासंभव विधवाओं को दूसरा पति ग्रहण करने की आजादी है, उनके अनुसार शूद्र वर्ण के हिन्दू विधवा विवाह करते हैं परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्ण के लिए यह आजादी नहीं है। अन्य जाति के लोग विवाह को सांसारिक सुख और इन्द्रिय तृप्ति की एक वस्तु समझते हैं। इसी से उनमें विधवाओं को फिर से पति प्राप्त करके सुख भोग करने का अधिकार है। किन्तु हिन्दू के पुत्र और कन्या का विवाह सूत्र में बंधने के बाद कुछ और ही सम्बन्ध हो जाता है।”⁶

सामाजिक समरस्ता के समर्थक : गुप्त जी सभी धर्म व जाति के लोगों को इस बात के लिए प्रेरित करते थे कि मानव जाति एक है। कोई भी धर्म वैर-विरोध की भावना नहीं सिखाता। अतः आज की राजनीतिक परिस्थितियों में यह बात अति आवश्यक है कि हम सब भारतीय मिलकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाएं और सामाजिक समरसता का निर्वहन करें। हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का सार भी यही है। जो लोग धर्म के नाम पर लोगों में झगड़े करवाते हैं, वे स्वार्थी सिद्धी के कारण ऐसा करते हैं।

सारांश: अन्त में कहा जा सकता है कि गुप्त जी भारतीयों के कल्याण के लिए हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने सनातन धर्म होने के साथ-साथ शुद्ध रूप से वैष्णव धर्म का भी निर्वहन किया है। वे एक ऐसा भारतीय समाज चाहते थे जो सभी प्रकार की सामाजिक बुराईयों से मुक्त हो। इसके लिए वे युवा वर्ग से भारतीय संस्कृति के अनुसार धर्माचरण करने की आशा रखते थे। उन्होंने हमेशा शोषित लोगों के पक्ष में अपनी पत्रकारिता को अपना हथियार बनाया। अधिकांश साहित्यकारों का मानना है कि गुप्त जी की लेखनी न केवल ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों के विरोध में चली बल्कि गुप्त जी ने सामंतशाही प्रणाली का प्रबल विरोध किया और लोगों में सामाजिक चेतना पैदा करने के लिए भी अपनी लेखनी को आधार बनाया। अन्ततः गुप्त जी हिन्दी



पत्रकारिता के ऐसे कीर्ति स्तम्भ हैं, जिन्होंने एक साहित्यकार के रूप में आम जनमानस पर एक अमिट छाप छोड़ी है। हिन्दी के एक यशस्वी पत्रकार होने के साथ-साथ वे सामाजिक चेतना के भी प्रसिद्ध साहित्यकार माने जाते हैं। उनके साहित्य का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने शोषित वर्ग के सबसे सच्चे हितैषी व प्रतिनिधि साहित्यकार के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन किया। उनका हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में देन का आंकलन करते हुए आर.सी. त्रिपाठी ने लिखा है – “गुप्त जी एक निर्भिक एवं तेजस्वी पत्रकार और हिन्दी गद्य तथा व्यंग्य साहित्य के आलोक स्तम्भ थे। उनमें भारतीय राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी थी और वे भारतीय संस्कृति व सभ्यता से ओत-प्रोत थे।”⁷



सन्दर्भ सूची :

- ¹ भारत मित्र, कलकत्ता, 16 जनवरी 1891.
- ² झाबरमल शर्मा एवं बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, पृ० 680—81.
- ³ हिन्दी बंगवासी, कलकत्ता, 20 मई 1895.
- ⁴ कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता: जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण—भूमि, पृ० 428.
- ⁵ झाबरमल शर्मा एवं बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ, पृ० 698.
- ⁶ भारत मित्र, कलकत्ता, 6 जुलाई, 1901.
- ⁷ आर. सी त्रिपाठी, हिन्दी पत्रकारिता के सिद्धान्त, पृ. 269